

मनुस्मृति में वर्ण-व्यवस्था का सूक्ष्म अवलोकन

सारांश

प्राचीन भारतीय सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक पद्धतियों के ज्ञान के लिए स्मृतियों का महत्वपूर्ण स्थान है। स्मृतियों में मनुस्मृति का महत्व सर्वत्र स्वीकृत है। क्योंकि अन्य सभी स्मृतियाँ इससे अत्यन्त प्रभावित हैं। हिन्दुओं का विधिविषयक साहित्य तीन भागों में बाँटा जा सकता है— धर्मसूत्र, धर्मशास्त्र और टीकायें। इन तीनों धर्मशास्त्र में मनुस्मृति सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं और सम्पूर्ण धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में मनुस्मृति सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। मनुस्मृति में वर्ण-व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'वृज वरणे' अथवा वरी धातु से हुई है। जिसका अर्थ है चुनना या वरण करना। वर्ण और वरण शब्दों में भी साम्य है। संभवतः वर्ण से तात्पर्य वृत्ति से है। किसी विशेष व्यवसाय के चुनने से। वास्तव में वर्ण उस सामाजिक वर्ण की ओर इंगित करता है जिसका समाज में विशिष्ट कार्य और स्थान है, जो अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण समाज में अन्य वर्गों अथवा समूहों से सर्वथा अलग होता है तथा अपने हितों और स्थितियों के विषय में जागरूक होता है। आर्य-वर्ण और दास-वर्ण अथवा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत आते हैं जो कालान्तर में केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में वर्ण-व्यवस्था में रह गये। वर्ण शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है, जो पूर्व वैदिक युग की सामाजिक संरचना के प्रारम्भिक स्वरूप को स्पष्ट करता है उसमें वर्ण का प्रयोग रंग अथवा आलोक के अर्थ में है।¹ तथा यत्र-तत्र ऐसे वर्गों के लिए भी वर्ण का व्यवहार हुआ है, जिनके शरीर की त्वचा श्याम थी अथवा श्वेत। तत्कालीन समाज में दो ही वर्ण थे एक आर्य और अनार्य या दास (अथवा दस्यु)।² आर्य सदाचार और सद्वृत्तियों का अनुसरण करने वाले थे तथा दास दुर्वृत्तियों, अनियमितताओं और अव्यवस्थाओं को उत्पन्न करने वाले थे। आर्य बाहर से आये थे। उन्होंने हड़प्पा संस्कृति के निवासियों को पराजित किया और दास बनाया। अतः स्पष्ट रूप से आर्य और दास नामक दो वर्ण समाज में हो गये जिनका वैदिक युग के प्रारम्भिक काल तक पृथक अस्तित्व बराबर बना रहा।



कमल किशोर यादव

असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
मध्यकालीन इतिहास विभाग,
नारायण महाविद्यालय,
प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश

मुख्य शब्द : वर्ण-व्यवस्था, धर्म, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र।

प्रस्तावना

प्राचीन धर्म शास्त्रों में वर्णों की उत्पत्ति ईश्वरकृत अथवा दैवीय मानी गयी है तथा उनके विभाजन को आदरपूर्वक पवित्र माना गया है। भारतीय धार्मिक साहित्य, मनुस्मृति में सम्पूर्ण मानव समुदाय को चार वर्णों में विभक्त किया गया है। मनुस्मृति में ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य इन तीनों को द्विजाति या द्विज एवं शूद्र वर्ण को एक जाति कहा गया है। इस कथन से मनु की दृष्टि में वर्ण-व्यवस्था जन्मना मान्य है।³ ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में वर्ण-सम्बन्धी उत्पत्ति के विवरण को स्वीकार किया गया है। इसके वर्णन के अनुसार वर्णों की उत्पत्ति विराट पुरुष से हुई थी। उसके मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरु (जाँघ) से वैश्य तथा पाद (पैर) से शूद्र उत्पन्न हुए।⁴ यह सृष्टिकर्ता अथवा विराट पुरुष हजार सिर, हजार आँखों और हजार पैरों वाला था, जो भूत और भविष्य दोनों था और जिससे सृष्टि की उत्पत्ति हुई थी।⁵ अतः ऐसे विशाल ईश्वर से चारों वर्णों की उत्पत्ति हुई। ब्राह्मणों की उत्पत्ति मुँह से इसलिए कही गयी कि उनका समस्त कार्य मुँह से सम्बन्धित था अर्थात् शिक्षा और विद्या प्रदान करना। क्षत्रियों को बाहु से इसलिए उत्पन्न माना गया कि उनका सभी प्रमुख कार्य देश की सुरक्षा व प्रशासन आदि, बाहु से आबद्ध था बाहु शक्ति और शौर्य का परिचायक माना गया है और शरीर में उसकी स्थिति प्रमुख है। वैश्यों का जाँघ से उदभव इसलिए स्वीकार किया गया है कि उनका प्रमुख कार्य समाज की आर्थिक व्यवस्था सुदृढ़ करना था। जिस प्रकार शरीर के लिए जाँघ महत्वपूर्ण है उसी प्रकार समाज के लिए वैश्यों की। इसी प्रकार शूद्रों की उत्पत्ति पैर से इसलिए कही गयी कि अपनी सेवा द्वारा वे तीनों वर्णों और समाज को गति प्रदान करते

थे। पैर का प्रमुख कार्य है शरीर के ऊपर के भार को वहन करना और शरीर को गतिमान रखना।

उद्देश्य

1. वर्ण-व्यवस्था का उद्भव कैसे और किस परिस्थितियों में हुआ।
2. वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति में कौन सा आधारभूत सिद्धान्त क्रियाशील था।
3. वर्ण-व्यवस्था का विकास इतिहास की घटनाओं से किस प्रकार संदर्भित रहा।
4. सभी वर्णों के कर्मों और कर्तव्यों का निर्धारण किस प्रकार संभव हुआ।
5. वर्ण-व्यवस्था में वर्णों के कर्तव्यों के निर्धारण में गुणात्मकता, व्यवसायत्मकता व वैज्ञानिक पद्धति का समायोजन कैसे संभव हुआ।
6. वर्णों के द्वारा कर्मों के निर्बाध गति से व निष्ठापूर्वक सम्पादन में धर्म का समायोजन किस प्रकार संभव हुआ।

ऋग्वेद के पूर्ववर्ती काल में समाज में तीन वर्णों ब्राह्मण, राजन्य (क्षत्रिय) और वैश्य का ही उल्लेख हुआ है। पहले दो वर्ण कवि-पुरोहित और वीर-नामक के व्यवसायों का प्रतिनिधित्व करते हैं और तीसरा वर्ण सामान्य लोगों का समूह था, जिसमें समाज के शेष लोग सम्मिलित थे। ऋग्वेद के उत्तरवर्ती काल में ये तीन वर्ण चार वर्णों में विकसित होकर सुदृढ़ हो गये। यद्यपि यह कहा जाता है कि पुरुषसूक्त फलतः परवर्ती रचना है, वर्ण-व्यवस्था ऋग्वैदिक न होकर परवर्ती काल की सामाजिक व्यवस्था है।⁶ इस काल के अन्त तक वर्णों के सामान्य कर्म का प्रतिपादन हो चुका था। ब्राह्मण वर्ण ने तो निश्चय ही जाति के सभी लक्षणों को प्राप्त कर लिया था यह सही है कि मात्र ऋग्वेद का ही साक्ष्य इसका प्रमाण नहीं, किन्तु इस रचना में यत्र-तत्र ब्राह्मण को मिथ्या दावा उपस्थित करते हुए जाना जा सकता है।⁷ मनु ने यह उल्लेख किया है कि लोकवृद्धि के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को क्रमशः मुख, बाहु, जंघा और चरण से उत्पन्न किया।⁸ इस सिद्धान्त के अन्तर्गत वर्णों का एक-दूसरे वर्ण से सम्बन्ध उनका एक दूसरे से उच्च स्थान तथा उनके विभिन्न निश्चित कर्मों का नियोजन है। जिससे भारतीय समाज में उनकी ऐतिहासिकता तथा कार्यप्रणाली का पता चलता है। तत्कालीन समाज का वर्णों में बँटा हुआ वर्गीकरण तथा व्यावहारिकता के आधार पर सुनिश्चित कार्य विभाजन इसकी अपनी मौलिकता है।

सामाजिक व्यवस्था में कर्म का सिद्धान्त अपना विशेष महत्व रखता है विभिन्न वर्णों के अलग-अलग कर्म निर्धारित थे अथवा कर्म के ही आधार पर वर्णों का वर्गीकरण हुआ था। वैदिक युग के अत्यन्त प्रारम्भिक काल में जो लोग विद्या, शिक्षा, तप, यज्ञ, धार्मिकता आदि में अधिक रुचि रखते थे, वे ब्राह्मण वर्ण के अन्तर्गत ग्रहीत किये गये। ऐसे लोगों का मुख्य कर्म अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन और तप था। जो वर्ण शासन-संचालन और राज्य व्यवस्था में योग देता था तथा जिसका प्रधान कर्म देख की रक्षा, प्रशासन आदि था वह राजन्य (क्षत्रिय) वर्ण से सम्बन्धित किया गया। पशुपालन, कृषि और व्यापार जिसका प्रधान कर्म था, वह वैश्य वर्ण का माना गया। समाज के तीनों वर्णों की सेवा और परिचारक वृत्ति करने

वाला वर्ण शूद्र का कहा गया। इस प्रकार वर्णों के प्रधान कर्म थे, जिनके आधार पर इनका उद्भव हुआ था। मनु ने भी राजा के मंत्रियों में ब्राह्मण, मंत्री नियुक्त करने का उल्लेख किया है जो प्रशासन में सहायक होता था। उसके अनुसार राजा उन मंत्रियों में से विद्वान, धर्मादि युक्त विशिष्ट एक ब्राह्मण मंत्री के साथ षड्गुण से युक्त श्रेष्ठ मंत्र की मंत्रणा करता था तथा उस पर पूर्ण विश्वास कर उसे सब कार्य सौंप देता था एवं उससे परामर्श और निश्चय कर कार्य आरम्भ करता था।

वेदों का प्रचार और प्रसार ब्राह्मणों से ही था। समाज के समस्त धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन कर्ता ब्राह्मण ही था। ब्राह्मण की स्थिति समाज में सर्वोच्च थी। उसकी यह सर्वोच्चता उसके ज्ञान और विद्वता के कारण थी। वैदिक युग से ही उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा थी।

मनु के अनुसार जाति की विशिष्टता से उत्पत्ति स्थान (ब्रह्मा के मुख) की श्रेष्ठता से अध्ययन-अध्यापन एवं व्याख्यान आदि के द्वारा नियम (श्रुति-स्मृति-विहित-आचरण)के धारण करने से और यज्ञोपवीत संस्कार आदि की श्रेष्ठता से सब वर्णों में ब्राह्मण ही वर्णों का स्वामी माना जाता था।⁹

ऋग्वैदिक काल के प्रथम चरण में आर्य और दास नामक दो वर्ण अथवा वर्ण थे। इन दोनों वर्णों का विभाग आचारमूलक, व्यवहारमूलक और कर्ममूलक था। दोनों के भिन्न-भिन्न कर्म थे। ऋग्वेद में एक स्थल पर कहा गया है कि समस्त विश्व को आर्य बनाओ।¹⁰ महाभारत में उल्लिखित है कि सर्वप्रथम केवल ब्राह्मण ही समाज में थे, बाद में अपने कर्तव्यों की विभिन्नता के कारण समाज में कई वर्ण हो गये।¹¹

पुराणों में भी कर्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है तथा यह माना गया है कि पूर्वजन्म के कर्मों के परिणामस्वरूप ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न हुए।¹² समाज में ब्राह्मण का स्थान सर्वोच्च विराट् पुरुष के मुख से उत्पन्न होने के कारण उसकी विशिष्टता स्वयं सिद्ध थी। पृथ्वी पर सर्वप्रथम उसकी उत्पत्ति हुई और तदनन्तर क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

क्षत्रियों की स्थिति भारतीय धार्मिक समाज में ब्राह्मण के बाद थी किन्तु उनका मान ब्राह्मण से कम नहीं था। देश और समाज की रक्षा-व्यवस्था का भार क्षत्रियों पर ही था। अपने युद्ध कौशल और प्रशासन से वे समाज को रक्षित और पोषित करते थे। ऋग्वेद में उन्हें 'क्षत्र' से सम्बन्धित किया गया है जिसका अर्थ शौर्य और पराक्रम से है।¹³

यद्यपि उस युग में क्षत्रिय वर्ण जन्मना न होकर कर्मणा ही था तथापि युद्ध की शौर्य से सम्बद्ध वर्ण को क्षत्रिय (राजन्य) वर्ण के रूप में ग्रहीत किया गया। सभी का शास्त्रकार वर्णानुकूल कर्म की प्रशंसा करते हैं तथा इसी से व्यक्ति, परिवार और समाज का उत्कर्ष मानते हैं। उन्होंने व्यावहारिकता को दृष्टिगत करके परिस्थितियों की प्रतिकूलता पर भी विचार किया है। इसलिए आपत्तिकाल में उसके लिए जीविकोपार्जन के निमित्त अन्य वर्णों के कर्म अनुपालित करने का भी निर्देश दिया गया। क्षत्रिय को आपद्धर्म के अन्तर्गत वैश्य कर्म अपनाने की सलाह दी गयी। किन्तु उसे हिंसा-प्रधान, कृषि-कर्म करने की अनुमति नहीं थी।

वैश्य के लिए 'पाणिनी' ने आर्य शब्द का प्रयोग किया है। समाज में वैश्यों का स्थान क्रमानुसार तीसरा था। व्यापारिक व्यवस्था और कृषि का समस्त भार उसके ऊपर था राज्य और देश की आर्थिक स्थिति उसी के सदप्रयास से सुदृढ़ होती थी। अर्थ-सम्बन्धी नीतियों का सारा संचालन वैश्य वर्ग करता था। अध्ययन, यजन और दान उसका परम कर्तव्य था। 'कौटिल्य' के अनुसार उसका प्रधान कर्म था अध्ययन करना, यज्ञ करना तथा दान देना, वैश्य का प्रमुख ध्येय था धनार्जन करना। 'मनु' का कथन है कि पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, व्यापार करना, ब्याज लेना, कृषि करना, वैश्यों का प्रधान कर्म था।¹⁴ कौटिल्य ने उसे अध्ययन, यजन और दान करने की भी अनुमति प्रदान की है।¹⁵

समाज में शूद्र का स्थान अत्यन्त निम्न था हेमचन्द्र ने शूद्रों को छः नाम निर्दिष्ट किये हैं— शूद्र, अन्त्यवर्ण, वृषल, पद्य, पज्जः और जघन्य।¹⁶ वह पतित और हेय माने जाते थे।¹⁷ मनु ने शूद्र के अन्तर्गत विभिन्न देशी और विदेशी तत्वों को सम्मिलित किया था, जिससे यह वर्ण समुचित रूप से सबल हो गया था। मनु का कथन है कि श्रद्धायुक्त होकर अपनी अपेक्षा नीच व्यक्ति (शूद्र) से भी उत्तम विद्या ग्रहण करनी चाहिए।¹⁸ शूद्र पूर्णरूपेण द्विजों की दया पर निर्भर करते थे। उसका सर्वोत्कृष्ट कर्म द्विज वर्ण की सेवा करना था। मनु ने विपत्तिग्रस्त शूद्र के लिए विभिन्न उद्योग-धन्धे अपनाए का निर्देश किया है। आपत्तिकाल में शूद्र, वैश्य वर्ण के कार्य अपना सकता था। सम्भवतः अलबरुनी ने वैश्यों और शूद्रों को समान श्रेणी का समझा है। मनु ने चार वर्णों के अतिरिक्त पाँचवें को अस्तित्वहीन माना है।

निष्कर्ष

इस प्रकार कहा जा सकता है कि— वर्ण-व्यवस्था के मूल में कर्म का सिद्धान्त अत्यधिक प्रभावशाली था। वस्तुतः वर्ण-व्यवस्था के प्रारम्भिक स्वरूप का निर्माण कर्म के ही मार्ग पर हुआ। इसका उदय और विकास कर्म के सिद्धान्त पर अपेक्षाकृत अधिक अवलम्बित था। विभिन्न वर्णों में कर्म और कर्तव्य मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन को ही नहीं बल्कि पारिवारिक और सामाजिक जीवन को भी उन्नत करते रहे हैं। समाज का सुव्यवस्थित और सुसंगठित रूप वर्णों के निर्धारित कर्मों से ही पुष्ट और स्वस्थ होता रहा है। विभिन्न वर्णों के प्रतिपाद्य, कर्म, वर्ण, धर्म के नाम से समाज में अवस्थित हुए तथा सामाजिक जीवन के प्रधान अंग बन गये। वर्णों की

उत्पत्ति जन्म से भी मानी गयी है। ब्राह्मण परिवार में जन्मा व्यक्ति अयोग्य और अज्ञानी होकर भी पूजनीय माना जाता था तथा चारों वर्णों में श्रेष्ठ समझा जाता था।

इस प्रकार वर्ण का आधार जन्म माना गया है न कि कर्म। मनु ने चार वर्णों के अतिरिक्त पाँचवें को अस्तित्वहीन माना है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद 1.73.7, 2.3.5, 9.97.16, 9.104.4, 9.105.4, 10.124.7
2. वही, 2.2.4 यो दासं वर्णमधरं गुहा कः।
3. मनुस्मृति 10.4, "ब्राह्मण, क्षत्रियों वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः। चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पंचमः।
4. ऋग्वेद 10.90.12 ब्राह्मणोऽस्य मुख्वासीद् बाहू राजन्यः कृतः। उरुतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।।
5. वही 10.90.12.1 सहस्त्रशीर्षापुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात। पुरुषएवेदं सर्वं सदभूतं चरुय भव्यम्।।
6. दत्त ओरिजिन ऐंड ग्रोथ ऑव कास्ट इन इण्डिया, 1 पृष्ठ 31
7. ऋग्वेद 10.71
8. मनुस्मृति 1.31, लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहू रूपादतः। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यं शूद्रं च निरवन्तयत्।।
9. मनुस्मृति 10.4
10. ऋग्वेद 9.63.5 कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम्।
11. महाभारत, शान्तिपर्व, 188.10 न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्रह्ममिदंजगत्। ब्राह्मणाः पूर्वसृष्टं हि कर्मभिवर्णतां गतम्।।
12. ब्रह्माण्ड पु० 27.133, वायु पु० 8.140—41 ब्राह्मणां क्षत्रियाः वैश्याः शूद्रा द्रोहिजनास्तथा। भविताः पूर्वजातीषु कर्मभिश्च शुभाशुभैः।।
13. ऋग्वेद 8.35.16—18.1.157.2
14. मनुस्मृति 10.83 वैश्यवृत्यापि जीवस्तु ब्राह्मण क्षत्रियोऽपि वा। हिंसाप्रायं पराधीनां कृषि यत्नेन वर्जयेत्।।
15. अर्थशास्त्र 3.7 वैश्यस्याध्ययनं यजनं दानं।
16. अभिधान चिन्तामणि 3.894 शूद्रोऽन्त्यवर्णो वृषलः पद्यः पंजोजघन्यजः।
17. विस्तार के लिए देखिए, शम्भू शूद्राज इन एंशिपंट इण्डिया।
18. मनुस्मृति 2.238 श्रद्धधानः शुभां विद्यामामददीतावरादपि। अन्त्यादपि परं धं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।।